ओ३म्

विश्व साहित्य की अनमोल निधि

वेद

लेखक :—श्री भद्र सेन आ. वेद-दर्शनाचार्य

Scanned with CamScanner

ओ३म्

विश्व साहित्य की अनमोल निधि

वेद

लेखक —विद्वद्वर प्रा. भद्रसेन जी वेद—दर्शनाचार्य,

साधु आश्रम होशिआरपुर

Scanned with CamScanner

विश्व साहित्य की अनमोलनिधि

यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि 'वेद'' संसार के पुस्तकालय की सब से प्राचीनतम पुस्तक है। भारतीय साहित्य और संस्कृति के विकसित वटवृक्ष का यदि किसी को मूल कारण कह सकते हैं तो वह केवल वेद[१] ही है। वेद की ही विचारधाराओं से रस लेकर भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के विविध पहलू अनुप्राणित हुए। वेद के अर्थों और भावों के प्रकाश के लिए ही वैदिक साहित्य का विकास हुआ तथा प्राचीन गद्य-पद्यमय लौकिक साहित्य भी वेद भूमि से रस लेकर ही पल्लवित-पुष्पित और फलित हुआ है। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एक स्वर से वेद को अक्षयस्रोत मानता है या मनु[२] के शब्दों में कहें तो वेद मानव जाति का सनातन (सदा से आने वाला) चक्षु है, वेद से ही सब के स्वरूप का ज्ञान होता है, क्योंकि यह सर्व ज्ञान मय है।

प्राचीन और अर्वाचीन भारतीयों के जीवन का परिशीलन करने से प्रतीत होता है कि वेद भारतीयों की पवित्र धरोहर, ज्ञाननिधि एवं व्यवहार की निकष है। अतएव उनके धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक और शैक्षणिक आदि सारे कृत्य वेद से ही सञ्चालित होते हुए दिखाई देते हैं अर्थात् इन क्षेत्रों में सर्वविध

१—वेद मानव की सम्पत्ति होने से भारतीयों की भी सम्पत्ति है, तथा भारतीयों ने इसके रक्षण, प्रसारण और आचरण की दृष्टि से विशेष यत्न किया है, अतः यहाँ वेद के साथ भारतीय शब्द का प्रयोग किया गया है।

२—"वेदश्चक्षुः सनातनम्" १२, ९४, सर्वं वेदात् प्रसिध्यति १२, ९७; सर्वज्ञानमयो हि, सः २

Scanned with CamScanner

विकास और प्रचलन के मूल में वेद की ही सूक्ष्म भावनाएं किसी न किसी रूप में व्याप्त दिखाई देती हैं। इस लिए हम कह सकते हैं कि भारतीयता रूपी शरीर के वेद प्राण या आत्मा हैं, जिसके प्रभाव और चेतना से भारतीय शरीर सजीव, सचेष्ट, विकसित और गौरवान्वित हुआ है।

प्राचीन भारतीय साहित्य की यह दृढ़ धारणा है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने पृथिवी, वायु, सूर्य आदि पदार्थों की तरह वेदज्ञान दिया। जैसे एक डाक्टर औषधी के साथ उस की सेवन विधि और पथ्यापथ्य विषयक ज्ञान देता है अथवा एक आविष्कारक यन्त्र के साथ उस के सम्बन्ध में उपयोगी ज्ञान देता है. अन्यथा उस यन्त्र से उपयोग लेना असम्भव हो जाय। इसी प्रकार परमेश्वर ने सूर्य, वायु आदि भौतिक और अभौतिक पदार्थों के यथोचित उपयोगार्थ सृष्टितत्वों का मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए तत्सम्बन्धी ज्ञान दिया। जिससे उसके द्वारा मानव अपने जीवन को सुविधापूर्ण, सुखद, विकसित और सफल बना सके। इसी लिए मनुस्मृति में कहा है - अतएव मैं इसको मानव का परम साधन (सहायक) मानता हूं[१]। जैसे नेत्र स्वस्थ होते हुए भी विना प्रकाश के अपना कार्य नहीं कर सकते हैं, वैसे ही हमारी बुद्धि ज्ञान के विना एक पग भी नहीं चल सकती। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि मनुष्य का ज्ञान नैमित्तिक है। प्रत्येक मनुष्य विना किसी निमित्त के ज्ञान और भाषा सीख नहीं सकता। यह इतिहास में कई बार परीक्षणों से परीक्षित हो चुका है कि मानव दूसरों से ज्ञान और भाषा सीखता है। भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न नामों से अनेक कल्पनाएं कीं, कि इस प्रकार आरम्भ में भाषा की उत्पत्ति हुई। परन्तु आज स्वयं भाषाशास्त्रियों ने उन कल्पनाओं को अनेक दोषों से दूषित

१—तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्। १२, ९९

स्वीकार कर लिया है। अब भाषावैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि अति प्राचीनकाल की घटना होने से भाषा की उत्पत्ति के निश्चित प्रारम्भिक कारण को ढूंढ निकालना भाषा विज्ञान का विषय नहीं है अतः ज्ञान और भाषा प्रदान का प्रारम्भिक गुरु ईश्वर को मानने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान होने से सूर्य और वायु की तरह सब की सम्पत्ति है, यह किसी वर्ग विशेष की धरोहर नहीं है। वेद की दृष्टि में सब मानव एक समान हैं। वेद ने स्थान स्थान पर संकेत किया है कि प्रत्येक मानव हर प्रकार से दूसरे मानवों की पालना पोषणा करे[१]। अमर अविनाशी प्रभु के सब पुत्र इसका श्रवण करें[२]। इतना ही नहीं अपितु वेद ने स्पष्ट शब्दों में उपदेश दिया है—मनुष्य को ही नहीं अपितु मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं और हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें[३] अर्थात् अपने पराए का कोई भेदभाव न हो। अथर्व वेद का पृथिवी सूक्त यह बताता है कि पृथिवी और उसके भोग इस पृथिवी पर रहने वाले प्राणिमात्र की सम्पत्ति हैं। इस को किसी विशेष की सम्पत्ति मानना दूसरों के अधिकारों के ऊपर छापा मारना है। इसी स्थिति में ही पृथिवी का प्रत्येक वासी कह सकता है—यह पृथिवी मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूं[४]। यह सारा ही सूक्त समस्त पृथिवी वासियों को एक परिवार के रूप में प्रस्तुत कर पृथिवी के दिव्यीकरण के साथ जीवन की सफलता का भाव दर्शाता है। एक अन्य स्थल पर स्पष्ट शब्दों में कहा है—सब के लिए खान-पान

१—पुमान् पुमांसं परिपातु सर्वतः

२—शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः यजुर्वेद ११, ४

३—मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

की एक व्यवस्था हो तथा सब मिलकर कार्य करें[१]। सब मनुष्यों को पारस्परिक सौभाग्य बढ़ाने के लिए भाईयों की तरह मिल कर प्रयत्न करना चाहिए। (तुम में से) न कोई छोटा है न कोई बड़ा, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सब का पिता है और अनेक विध भोग्यों को देने वाली यह पृथिवी सब मानवों के लिए सर्वथा हितकारिणी है[२]।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि वेद मानवमात्र की सम्पत्ति है, इस लिए वेद में किसी जाति विशेष का इतिहास वा किसी के प्रति पक्षपात की भावना के निर्देश का प्रश्न ही नहीं उठता। आज तक इस सम्बन्ध में जितनी भी कल्पनाएं की गई हैं, वे सब अपूर्ण दोषयुक्त तथा वेद के वर्णन से असंगत हैं। इस प्रसंग में विशेष रूप से आर्य और दस्यु का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है तथा वेदों को केवल आर्य जाति का इतिहास और उनका पक्षपोषक ग्रन्थ माना जाता है। बिना किसी पूर्वाग्रह के निष्पक्षपात पूर्वक वेदों का अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आर्य और दस्यु परस्पर विरोधी अर्थवाचक शब्द हैं। इन का वेद में दो प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है, एक तो विशेषणों सहित और दूसरा विशेषणरहित। विशेष्य के साथ प्रयुक्त विशेषण ही विशेष्य के स्वरूप के प्रतिपादक होते हैं तथा तत्स्वरूप स्वरूप के निर्णय में एकमात्र सहायक हैं। इन विशेषणयुक्त स्थलों से ही विशेषणरहित स्थलों का निर्णय हो सकता है।

ऋग्वेद में एक स्थल पर दस्यु[३] को अकर्मा, अमन्तु, अन्यव्रत

१—समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि
अ ३, ३०, ६।

२—अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥
ऋ ५, ६०, ५

और अमानुष विशेषणों से सम्बोधित किया है। न+कर्मा-अकर्मा (निकम्मा) जो कर्मशील नहीं, आलसी है, अपने कर्तव्य कर्म का पालन नहीं करता या उलटे कर्म करता है। न+मन्तु-अमन्तु जो विचार शून्य, अज्ञानी मूर्ख, विचारने में असमर्थ, अविवेकी अर्थात् जो बिना विचारे कर्म करता या विपरीतज्ञानवान्, अन्यव्रत सामाजिक व्रतों (नियमों) से विपरीत जिसका व्यवहार है या जिसके व्रत हैं अर्थात् समाज के नियमों का पालन न करने वाला। न+मानुष =अमानुष मानव के सहानुभूति, सहिष्णुता, सच्चरित्रता, उदारता, विवेकशीलता आत्मीयता, प्रेम, सहयोग, न्याय, सत्य, अहिंसा आदि गुणों से रहित है, वह दस्यु कहलाता है। इस से विपरीत जो कर्मशील, सत्पथगामी, मननशील, सामाजिक नियमपालक, संस्कृत, सभ्य और सच्चा मानव है वही आर्य कहलाता है। अतः ये शब्द जातिवाचक नहीं गुणवाचक हैं अन्यथा विशेषण देकर इस प्रकार इनके वर्णन की अपेक्षा न होती।

वेद के शब्द यौगिक तथा योगरूढ़ि हैं, परन्तु रूढ़ि नहीं, इसीलिए धातु या प्रकृति, प्रत्यय के अनुसार उनका अर्थ होता है। वेद के शब्दों को यौगिक न मानने से एक ही स्थल पर विशेष्य विशेषण रूप में आए हुए पर्यायवाची शब्दों का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं हो सकता। व्यक्तिवाचक शब्दों के साथ गुणवाचक शब्दों से होने वाले तरप्, तमप् प्रत्ययों का व्यवहार नहीं होता, परन्तु वेद में आम धारणा के अनुसार व्यक्तिवाचक समझे जाने वाले इन्द्र, कण्व आदि शब्द गुणवाचक प्रत्यय से युक्त होकर इन्द्रतम, कण्वतम रूप में उपलब्ध होते हैं। जो इन शब्दों के हर स्थिति में व्यक्ति वाचक होने में एक बहुत बड़ी रोकावट है। वेद के शब्दों को यौगिक माने विना उनके अनेक अर्थ भी नहीं हो सकते और न ही निरुक्ति के द्वारा अनेक अर्थों का प्रतिपादन सम्भव है। वेद मन्त्रों के अध्ययन से प्रत्येक इस परिणाम पर पहुंचता है, कि अग्नि आदि शब्द यत्र-तत्र अनेक अर्थों के वाचक

Scanned with CamScanner

है अन्यथा प्रकरण और तत् तत् प्रकरणगत भिन्न भिन्न विशेषणों की कोई संगति न लग सकेगी। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इन्द्र आदि अनेकार्थक माने गए हैं।

आर्य और दस्यु शब्द के प्रकृति, प्रत्ययनिर्दिष्ट अर्थ से भी उपर्युक्त विशेषण प्रतिपादित अर्थ की ही पुष्टि होती है। दस्यु शब्द दसु उपक्षये से बनता है, जिसका अर्थ है जो दूसरों, समाज के नियमों, स्वकर्तव्य और धर्म का उपक्षय = हिंसन, उल्लंघन करे। आज भी सामाजिक और राष्ट्रिय नियमों के उल्लंघन करने वालों को दस्यु = डाकू, चोर कहा जाता है। दस्यु से विपरीत आर्य है, जो कि अर्य एवं ऋ गतौ से बनता है। अर्य[१] का अर्थ है स्वामी, स्वामी का भाव हुआ जो अपनी भावनाओं, इच्छाओं इन्द्रियों और मन का स्वामी है, इनका दास नहीं। इन का दास ही इनके वश में हो कर स्व स्वार्थ वश सामाजिक व्यवस्थाओं, नियमों को तोड़ता है अर्थात् नियम तथा कर्तव्य का पालक आर्य कहलाता है और नियम और कर्तव्य का उल्लंघन करने वाला दस्यु, दास है। अतः सरलता से कहा जा सकता है कि आर्य और दस्यु शब्द या नाम जातिवाचक नहीं हैं अपितु कर्म और गुण के आधार पर हैं, तभी तो वेद ने आदेश दिया है कि हे कर्मशीलो! इन्द्र ईश्वर =ऐश्वर्य अच्छाई, शक्ति को बढ़ाते हुए, सब को आर्य =श्रेष्ठ करते हुए और अरावण= अदानी, कंजूस, स्वार्थी, सहानुभूतिरहित को नष्ट (उस भावना से दूर) करते हुए[२] जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करो। यहां स्पष्ट शब्दों में कहा है सब को आर्य करते हुए अर्थात् जो आर्य नहीं उस को आर्य करो, यदि वेद की दृष्टि में आर्य और दस्यु जातिवाचक शब्द होते तो

१—अर्यः स्वामिवैश्ययोः पा.

२—इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः।

जाति, वर्ण = रंग किसी भी स्थिति में बदल नहीं सकते। किन्तु आज भी अनेक रंग तथा शरीर की आकृति विशेष से इनका भेद मानते हैं परन्तु ऐसी स्थिति में आर्य बनाने का विधान व्यर्थ सिद्ध होता है अतः गुण वाचक मानने पर ही इस शब्द के अर्थ की संगति लग सकती है. अर्थात् सभी मानव एक से हैं. उनमें जो दूषित स्वभाव, व्यवहार युक्त हैं, उन्हीं को श्रेष्ठ बनाने का विधान है। अतएव महर्षि यास्क ने निरुक्त में आर्य का अर्थ ईश्वर पुत्र किया है। इन स्थलों की इन भावनाओं को ध्यान में रखने से अन्य स्थलों में बिना विशेषणों के वर्णित (इन्द्र या अग्नि दस्युओं को मारता है, आर्यों की रक्षा करता है और उन को विशेष ज्योति देता है आदि पक्षपातयुक्त दृश्यमान) भावनाओं की संगति लग जाती है। यह एक स्वाभाविक बात है कि प्रत्येक उत्तम राजा अपनी प्रजा में से संविधान के पालकों का ही रक्षण और वर्धन करता है, अन्य दण्ड और वध के भी अधिकारी होते हैं। रामायण में रावण को अनार्य, उस के भाई विभीषण को आर्य और कैकेयी को अनार्या कहा है। महाभारत में सद्गुणयुक्त व्यक्ति की ही आर्य संज्ञा है तथा सारे संस्कृत नाटकों में नायक, सूत्रधार, बड़े भाई और श्रेष्ठ व्यक्ति को आर्य शब्द से पुकारा गया है। यह ऐतिहासिक वर्णन भी आर्य शब्द को गुणवाचक ही सिद्ध करता है ।

अतएव भारतीय मनीषियों की यह मान्यता है कि सृष्टि के आरम्भ में सब मानवों के कल्याण के लिए ईश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामधारी ऋषियों के शुद्ध अन्तःकरण में क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद का प्रकाश किया जो कि सत्य विद्याओं के मूल होने से मानव जीवन की सफलता के लिए अपेक्षित सर्वविध क्षेत्रों के ज्ञान के निधान हैं। वेदों की भाषा देववाणी अर्थात् वैदिक संस्कृत है, जो कि लौकिक संस्कृत से

Scanned with CamScanner

अनेक दृष्टियों से भिन्न है। समय समय पर वेदों के भाव प्रकाशन, स्वरूपज्ञान और संरक्षण के लिए शाखा, ब्राह्मण, उपनिषद्, वेदांग, उपांग, प्रातिशाख्य, अनुक्रमणी और पद आदि पाठ ग्रन्थों का सर्जन हुआ। आज भी मानवता संवर्धन और सुख शान्ति की प्राप्ति के लिए वेदों की अनूठी शिक्षांए अपना विशेष आकर्षण रखती हैं। वेद की दृष्टि में सब मानव मानवता के नाते समान हैं और ये समान रूप से सब के लिए जीवन की सफलतार्थ सत्पथ प्रदर्शक हैं।

वेद की अनूठी शिक्षाएं

उन्नीसवीं शताब्दी में विद्या और ज्ञान के प्रकाश के साथ वेदों का क्षेत्र पुनः विस्तृत हुआ पुनरपि कुछ विशेष कारणों से वेद को गडरियों के गीत तक भी कहा गया है, अर्थात् वेद आदि मानव की शैशव काल की शैशवमयी रचना है। यह एक बहुत बड़ा भूठ है, क्योंकि वेद का कम से कम चतुर्थ भाग तो सरल, स्पष्ट भाषा में है, जो थोड़े परिश्रम से समझा जा सकता है। एक सामान्य संस्कृत पढ़ा हुआ भी वेद के अध्ययन के बाद सरलता से कह सकता है कि वेद में जीवन के उच्च आदर्शों और सत्य बातों का प्रतिपादन है। स्थाली पुलाक न्याय से कुछ उदाहरण पाठकों के विचारार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं। जिससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि वेद जीवन के विविध क्षेत्रों सम्बन्धी उच्च एवं यथार्थ शिक्षा देता है।

यह सर्वसम्मत सत्य है कि जिस संसार में हम रहते हैं, वह कार्य होने से अनित्य है। परन्तु वेद उसके अनित्य होने से झूठा होने की भावना में बहाकर या जीवन को दुःखों का घर अथवा इसके सम्बन्ध में अवास्तविक वैराग्य के नक्शे दिखा कर इस संसार और जीवन के प्रति निराशा की भावना नहीं देता। अपितु उत्साह और आशा का संचार करते हुए इस संसार और जीवन को सफल

Scanned with CamScanner

एवं समुन्नत बनाने की भावनाएं भरता है। आशामय स्पृहणीय जीवन के स्वरूप को प्रदर्शित करते हुए ही कहा है—कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो[1]। वह सौ वर्ष का जीवन विकलांगों का सा दुःखभरा, मोहताज, परवश, पराश्रयी, घृणामय न हो अपितु आंखों से देखते हुए, कानों से सुनते हुए, वाणी से उच्चारण और प्रवचन—आस्वादन करते हुए सौ वर्ष ही नहीं अपितु इस से भी अधिक सर्वांगपूर्ण स्वस्थ शरीर से जीवन का रस लो[2]। अदीनता के वातावरण में स्वच्छन्द, स्वस्थ, स्वाधीन श्वास लेते हुए सर्वविध विकासों से विकसित हो कर संसार में जीवन व्यतीत करो। अन्यथा रोगयुक्त, अशान्त और दुःखी जीवन से मौत ही अच्छी है। वेद बार बार कहता है यह जगत् और इसकी व्यवस्थाएं सुखद जीवन के लिए हैं न कि निराश और उदास होकर इससे भागने के लिए। यदि यह जीवन झूठा, दुःखमय, परित्याज्य होता तो (जीने के लिए किया है, उस को हमारेजीवन के लिए करो, यह हमें जीने के लिए दो[3] जमदग्नि और काश्यपीय भावयुक्त तीन सौ वर्ष की आयु वाला करो[4]। आदि शब्दों में) वेद अपने पाठकों को जीवन और दीर्घायु की भावना न देता अपितु इस से शीघ्र मुक्ति के उपाय ही बताता। परन्तु वेद जीवन को सत्यं, शिवं, सुन्दरं बनाने का पथ दर्शाता

१—कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। यजु: ४०, २।

२—तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम् प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम् भूयश्च शरदः शतात्॥ यजु: ३६, २४।

३—जीवातवे कृतः ऋ १०, १७६, ४; सनो जीवातवे कृधि ऋ १०, १८६, २; ततो नो देहि जीवसे च।

४—त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥

Scanned with CamScanner

है तथा दीर्घायु प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन शान्तियुक्त, विकासशील और सुरक्षित रूप में व्यतीत करना चाहता है, यह तभी सम्भव है जब राज्य एवं समाज की व्यवस्थाएँ उचित, स्थिर, सदृढ़ और विकासयोग्य हों। इनकी व्यवस्था के ठीक होने से ही सब का जीवन सुरक्षित तथा शान्तिमय हो सकता है। ऐसा होने पर ही किसी क्षेत्र में विकास की आशा की जा सकती है। आज प्रजातन्त्र का युग है, हम अपने स्वयं शासक, राज्य व्यवस्थापक हैं, क्योंकि प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि ही राज्य व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी, संविधान निर्माता और व्यवस्था के व्यवस्थापक होने हैं। आज हमें अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अनेक बार अवसर मिलता है। निर्वाचन के अवसर पर हमारे सामने एक गम्भीर समस्या आती है और हम दुविधा में पड़ जाते हैं कि अपना अनमोल मत किस प्रत्याशी को दें। वेद ने प्रतिनिधि निर्वाचन के उद्देश्य को सामने रखकर हमारी दुविधा का हल बड़े सरल और संक्षिप्त शब्दों में दिया है। "मा वः स्तेन ईशत, मा अघशंसः" यजु० १,१, हे मतदाताओ ! तुम्हारा प्रतिनिधि (शासक) स्तेन=चोर और पाप का प्रशंसक न हो। समाज के नियमों का उल्लंघन कर दिन या रात को दूसरों के स्वत्व=अधिकार, पदार्थ को ग्रहण करना चोरी है, अर्थात् समाज, राष्ट्र के नियमों का उल्लंघन करने वाला स्तेन कहलाता है। नियमों का उल्लंघन ही पाप है, जो पाप करता है या पाप करने वालों का समर्थक है, उनका किसी प्रकार से समर्थन करता है, अनुमोदन कर उत्साह बढ़ाता है या उनको आश्रय देता है, छिपाता है, रक्षा करता है या उनका पक्ष लेता है वह अघशंसी है। ऐसों को शासकत्व देने का अभिप्राय होगा कि वह भक्षक, शोषक बन स्वयं या दूसरों द्वारा प्रजा का खून चूस कर अव्यवस्था, अराजकता को जन्म दें। अतः

Scanned with CamScanner

जो विधान और नियमों के प्रति सच्चा हो, जो नियमों का किसी प्रकार से उल्लंघन नहीं करता तथा उल्लंघन करने वालों का समर्थक नहीं, वही प्रत्याशी केवल हमारा प्रतिनिधि होना चाहिए।

आज के न्यायालयों में चलने वाले अभियोगों में कम से कम अस्सी प्रतिशत अभियोग मार पिटाई सम्बन्धी होते हैं। जिसके मूल में घटना का सारांश यही होता है कि एक व्यक्ति या दल ने दूसरे की किसी वस्तु पर बलात् अधिकार किया होता है या उसको मारता है, तब पहला दूसरे से बदला लेने के लिए उस पर प्रत्याक्रमण करताहै और बात बढ़ जाती है अर्थात् पहला अपने प्रति किए गए अन्याय के लिए राज्य न्याय का आश्रय न लेकर अन्याय निवारणार्थ स्वयं उद्यत हो जाता है और न्याय को अपने हाथ में ले लेता है, जिससे बात नये रूप को धारण कर लेती है और दोनों अपराध के भागीदार बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में ही वेद ने कहा है—जब कोई तुम से द्वेष (अन्याय) करता है (या अपने प्रति अन्याय करने के कारण) जिससे तुम द्वेष करते हो, उसको न्याय के जबड़ों में सौंप दो[1], स्वयं अपनें हाथों में न्याय या शासन को न लो ऐसा करना सामाजिक अव्यवस्था, रोग को बढ़ावा देना है।

विचार विनियम और भाव प्रकाशन से होने वाले मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार का एक मुख्य आधार या साधन वाणी है। वाणी (भाषा) के बिना पारस्परिक व्यवहार सिद्धि की कल्पना एक भयानक स्थिति है। वह तो गूंगों की दुनिया होगी जहां कष्ट, दुख, अभाव और तड़फन के सिवाय और कुछ भी नहीं। पारस्परिक व्यवहार की सिद्धि में वाणी के महत्व को देखते हुए यह सरलता से कहा जा सकता है कि जब हम वाणी का उचित उपयोग करते हैं तब हमारा व्यवहार ठीक प्रकार से

1—योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

अथर्व ३, २७, १।

सम्पन्न होता है। परन्तु जब बिना विचारे या जानबूझ कर वाणी का अनुचित उपयोग किया जाता है तो उससे अनर्थ के सिवाय और कुछ भी परिणाम नहीं होता। इसके उदाहरण से इतिहास के पृष्ट भरे पड़े हैं तथा प्रतिदिन हम पग पग पर अनुभव भी करते हैं। इसी लिए वेद ने कहा है—जैसे छाननी से छान कर सक्तु का सेवन सुखद होता है, वैसे ही जो विवेकीजन मन रूपी छाननी से विचार कर हितकर, मधु सदृश वाणी का प्रयोग करते हैं, उनका मित्रवर्ग चिरस्थायी वृद्धियुक्त होता है और उनकी वाणी में कल्याणकारिणी लक्ष्मी का वास होता है[१]।

कई वार हम दुविधा में पड़ जाते हैं किसका विश्वास करें और किसका नहीं, क्योंकि कई वार ऐसा होता है कि हम किसी का विश्वास करते हैं और अन्त में वह धोखा दे जाता है। ऐसी विश्वास्य अविश्वास्य की दुविधा से निकलने का सरल मार्ग बताते हुए वेद ने कहा—इस चर-अचर के स्वामी ने देख भाल कर सत्य और झूठ के रूप को अलग अलग कर दिया है, अतः इस जग के मालिक ने झूठ=नियम=व्यस्था विरुद्ध, अन्धकारमय अन्याययुक्त, व्यवहार में अश्रद्धा अविश्वास घृणा परित्याग अलगाव को स्थापित किया है और सत्य=नियम, प्रकाश, ज्ञान व्यवस्था में श्रद्धा=विश्वास, प्रेम, सम्पर्क, अनुराग को जोड़ा है अतः जहाँ सच्चाई हो उसी का विश्वास करो। झूठ को अपने विश्वास का दान न करो अर्थात् झूठ से कभी प्रेम न करो[२]।

विश्वास और अविश्वास की आधारभूमि जब सत्य और

१—सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते, भद्रैषां लक्ष्मी निहिताधि वाचि॥
ऋ १०, ७, १२।

२—दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्या नृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधात्श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥ यजु १९, ७७।

Scanned with CamScanner

झूठ है तब यह स्वाभाविक सा प्रश्न आ जाता है कि सत्य क्या है और झूठ का स्वरूप क्या है ? क्योंकि अनेक अवसरों पर यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि सत्य कौन सा है ? और झूठ क्या है ? ऐसी स्थिति में सत्य और झूठ की पहचान तथा लाभ बताते हुए कहा है—समझदार व्यक्ति को मैं एक पते की बात बताता हूं कि सच्चाई और झूठ (एक दूसरे को दबाने या छुपाने के लिए) परस्पर स्पर्धा करते हैं (नीचा दिखते हैं)। उन दोनों में से सत्य वह है जो सरल, सीधा, बनावट, भय तथा छल कपट से रहित है। परन्तु झूठ कठिन, टेढ़ा, अस्पष्ट, छल-कपटमय और बनावट युक्त होता है, इसी लिए कहते हैं एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठ बोलने पड़ते हैं। सोम=ईश्वर, प्राकृतिक नियम सत्य की रक्षा करते हैं तथा असत्य का नाश करते हैं। सोम का भाव सुख, शान्ति, सन्तोष और सार भी लिया जा सकता है क्योंकि सत्य से ही सुख, शान्ति प्राप्त होती है और झूठ से दुःख, क्लेश, अशान्ति और कलह ही उत्पन्न होती हैं अर्थात् सत्य का सोम—सार, परिणाम, फल, सुख, शान्ति आदि सत्य की रक्षा करती हैं और झूठ के दुःख, क्लेश आदि फल मनुष्य से घृणा उत्पन्न कर उसका नाश कर देते हैं[1]।

प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि प्रत्येक मेरे साथ सत्य बोले और सत्य व्यवहार करे। सत्य की महिमा को ध्यान में रखकर प्रत्येक धर्म में सत्य की प्रशंसा और समर्थन प्राप्त होता है। कोई भी दुनिया में धर्म नहीं है जो यह कहता हो कि सत्य न बोलो। हर एक समझता और कहता है कि सत्य सबसे अच्छी

१—सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यसत् ॥

ऋ० ७, १०४, १२।

चीज है। ''सत्य बराबर तप नहीं'' सत्य से बढ़कर कोई महान् धर्म=कर्तव्य, नियम, विचार, पुण्य नहीं है। इस लिए ही कहते हैं कि सत्य ईश्वर है और ईश्वर सत्य है, ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। और झूठ से बढ़ कर कोई पाप, बुरा काम नहीं[१]। ऐसी स्थिति में मन में एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है, कि सत्य सिद्धि की प्रक्रिया क्या है ? जिस से मैं सत्य तक पहुंच सकूं या सत्य को प्राप्त कर सत्यमय हो जाऊं। मानव की इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए वेद ने कहा है —व्रत =नियमों के पालन से दीक्षा =योग्यता, पात्रता आती है, योग्यता से कार्य की सिद्धि होने पर दक्षिणा=समृद्धि, ऐश्वर्य, यश, उत्साह, धन मिलता है, दक्षिणा से श्रद्धा=विश्वास (सत्य का धारण) बढ़ता है सत्य के धारण से सत्य की संसिद्धि होती है[२]।

आज संसार में बच्चे से लेकर वृद्ध तक हर क्षेत्र का सदस्य अपने जीवन के हर कदम पर सफलता, विकास चाहता है। वह विकास, सफलता की प्राप्ति के लिए स्वशक्ति के अनुसार हर सम्भव प्रयास करता है। आज के संसार की गति, चहल-पहल का यही मूल हैं, वस्तुतः जहां विकास है वहीं जीवन है अर्थात् विकास का ही दूसरा नाम जीवन है। वेद ने विकास का मूलमन्त्र बताते हुए कहा हैं कि विकास उन्हीं के ही चरण चुम्बन करता है जो जीवन के जिस क्षेत्र में सफलता, विकास चाहते हैं, वहां वेद के निम्न सन्देश की ओर ध्यान देते हैं। सत्य=मन, वाणी और कर्म की एकता, छल-कपट रहितता, ईमानदारी, बृहत् =हृदय की विशालता, उदारता (जिन के दिल में अपने पराए का पक्षपात नहीं होता,) सहिष्णुता, ऋत=नियम, व्यवस्था,

१—न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।

२—व्रतेन दीक्षामाप्नोति दाक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ यजुः १९, ३०

मर्यादा, उग्रं=कठोरता ,दृढ़ता; न्याय, संयम, दण्ड, दीक्षा=योग्यता तप=कष्ट सहन शक्ति, ब्रह्म=ज्ञान विद्या, शिक्षा, यज्ञ=श्रेष्ठतम कर्म ही पृथिवी (विकास, फैलाव) को धारण करते हैं अर्थात् इन्हीं से पृथिवी पर रहने वाले प्राणियों विशेषकर बुद्धिजीवी मानव समाज का रक्षण, वर्धन, पालन और व्यवस्थीकरण होता है। सत्य आदि गुणों से धारित पृथिवी (विस्तृति) ही हमारे भूत-अतीत, भव्य—वर्तमान या भविष्य की रक्षिका है, यही हमारे लोक—जीवन, परिवार, समाज, कार्य, अभिलषित पदार्थ को विस्तृत करे। अर्थात् इन सत्य, बहत् आदि गुणों में किसी की रक्षा, वृद्धि, सफलता कीर्ति छिपी है। हमारे कार्य जीवन, समाज, संसार को विकासशील, सुन्दर, स्पृहणीय, प्रियतम बनाने का एक मात्र उपाय एवं आधार ये गुण ही हैं१।

यह सर्वसम्मत विचार है कि मेल मिलाप में ही सुख, शान्ति और आनन्द है। संगठन से ही कोई समाज, राष्ट्र उन्नति कर सकता तथा जीवित रह सकता है। अत एव कहते हैं कि आज कलि=कला, मशीन, शोर और युद्ध के युग में संघ में शक्ति=विजय, सफलता निहित है२। आज वैसे भी प्रजातन्त्र का युग है, वोट का जमाना है, अतः जिन का संघ है, उन्हीं का शासन और उन्हीं की तूती बोलती है। जो संगठन जितना अधिक चिरस्थायी, सुदृढ़, सुगठित होता है वह उतनी ही अधिक सफलता, विजय, श्री, शोभा को प्राप्त करता है। अतः स्वाभाविक रूपेण जिज्ञासा होती है कि कोई संगठन कब चिरस्थायी सुदृढ़, सुगठित और सफल होता हैं, इस का रहस्य

१—सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥
अथर्व १२, १, १।

२—संघे शक्तिः कलौ युगे। संहति कार्यसाधिका

संगठन सूक्त में बताते हुए वेद ने कहा१ :—

प्रेम से मिल कर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भांति तुम कर्तव्य के मानी बनो॥
हों विचार समान सब के चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूं बराबर भोग्य पा सब नेक हों॥
हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिस से बढ़े सुख सम्पदा॥

अर्थात् समाज का प्रत्येक घटक जब समाज के स्वर में अपना स्वर मिलता है जब सब के मन में समाज के हित में मेरा हित है की भावना होती है। जिस समाज में विना भेद भाव के सब को जीवन आवश्यकताओं की पूर्ति और उन्नति के लिए समान अवसर मिलता है। कोई समाज, संगठन तभी उन्नति को प्राप्त करता है जब आवाज़ एक हो और आवाज़ एक तभी होती है जब विचार समान हों।

आज संसार का एक बहुत बड़ा भाग अशान्त और दुःखी है, जिस के अनेक कारण हैं। परन्तु इस का सब से बड़ा कारण है, भ्रष्टाचार। वह कहीं भाई=भतीजा वाद के रूप में है तो कहीं मिलावट, चोर बाजारी, घूस खोरी की शकल में है। एक तरफ युद्धों की विभीषिका है तो दूसरी तरफ लोभ के विविध रूप हैं। अथवा अपने अपने धर्म, सम्प्रदाय के गुण

१—संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ऋ. १०, १९२,२—४॥

Scanned with CamScanner

गाकर कोई सब को येन केन प्रकारेण ईसाई बनाने पर तुला है तो कोई कहता है मुसलमान बनो, अन्य की प्रेरणा है बुद्ध या महावीर की शरण लो। कोई समाजवाद के गीत गा कर सब को इस ओर खींचना चाहता है तो कहीं पूंजीवाद या साम्यवाद का नारा है। इस प्रकार विविध वर्गों में बटता हुआ संसार आये दिन वर्ग संघर्ष का अखाड़ा बन कर अशान्ति को जन्म दे रहा है। इसी का ही परिणाम है कि अपने अपने वाद की खींचातानी से मानव मानव से दूर होता जा रहा है या कई बार मानव भेड़िये का रूप धर एक दूसरे के खून का प्यासा बन जाता है। ये भ्रष्टाचार के अनेक रूप तथा वर्ग संघर्ष, घृणा की प्रवृत्तियां, ईसाई हो, मुसलमान हो आदि की वर्गीय भावनाएं तभी उत्पन्न होती हैं जब वह मानवपन को छोड़ देता है। अपने मानवपन को याद रखने या दूसरों को भी अपने जैसा मानव मानने पर कौन किस से किस लिए विविध भ्रष्टाचार या वर्गीय घृणा करेगा। वह तो मानव मानव में अपनापन अनुभव कर सहानुभूति से भर कर एक रूप हो जाएगा, अपने से भिन्न या दूसरा अनुभव कर के ही व्यक्ति भ्रष्टाचार या वर्गीय घृणा के मार्ग को अपनाता है। अतः वेद ने भेद भाव जन्य प्रवृत्तियों को जड़ मूल से समाप्त करने के लिए कहा –

यदि अपने जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व को दिव्य, सुखी, शान्त, प्रगति शील और सुन्दर देखना चाहते हो तो मानव बनो तथा एतदर्थ सत्कर्मों का ताना बाना बुनते हुए सूर्य के समान अपने वृत्त=व्रत, नियमों का पालन करो और विवेकशीलों के मार्ग का बुद्धिपूर्वक संरक्षण और संवर्धन करो न कि अन्धानुकरण, तथाप्रशंसनीयों=जग के हिताभिलाषियों के समान उलझन रहित कर्म करो[१]।

१—तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्॥ ऋ० १० ५३ ६

मानव का भाव विवेक, सहानुभूति, सहिष्णुता, समभाव सहयोग, सच्चरित्र. प्रेम, न्याय, सत्य, अहिंसा उदारता, सहृदयता, आत्मीयता आदि गुण युक्त होना है तभी तो कहा है—

यही है इबादत यही दीनों ईमां।
कि काम आए दुनिया में इन्सां के इन्सां।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेद में जहां आध्यात्मिक तत्वों का गूढ़ विवेचन है वहां रोजमर्रा के जीवन सम्बन्धी लौकिक तत्वों का बड़ी सरलता से प्रतिपादन किया गया है। वेद लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के विकास को समान महत्व देते हुए मानव धर्म के सर्वांगीण तत्वों का चित्रण प्रस्तुत करता है। दोनों जीवनों में साम्मञ्जस्य रखते हुए किसी की भी उपेक्षा नहीं करता अपितु धन के प्रति भी बड़ी सुन्दर युक्तियक्त भावना देता है न कि एकांगी दृष्टिकोण से धन की निंदा करता है। वेद ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है[१]—

हम धन, ऐश्वर्य के स्वामी हों और सब का धारक, पोषक प्रभु हमें प्रकृष्ट पुरातन, जीवनोपयोगी, नाश रहित अर्थात् चिर-काल स्थायी धन से युक्त करे। और वह धन हम अपने शुद्ध परि-श्रम से प्राप्त करें अर्थात् माया को माया नहीं अपितु मेहनत खींचती है। अग्नि =परिश्रम से ही धन, ऐश्वर्य, सम्पत्ति प्राप्त होती है। अपने सच्चे परिश्रम से ऐसा धन कमाओ जो दिन प्रतिदिन पुष्ट हो या पुष्टि का कारण हो और यश=कीर्ति. तेज वीरवत्तम =शक्ति, बलयुक्त हो न कि क्षीणता, बदनामी और दुर्बलता का कारण हो[२]। अतः परिश्रम, पुरुषार्थ से ही हर प्राप्ति की चाहना करनी चाहिए, क्योंकि पुरुषार्थ ही सब सिद्धियों का मूल है।

---

१ --रयीणां पतयः स्याम धातादधातु नो रयिं प्राचीं जीवातुमक्षिताम्
२—अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे। यशसं वीरवत्तमम् ऋ १, १

Scanned with CamScanner

पुरुषार्थ ही इस दुनिया में सब कामना पूरी करता है।
मन चाहा सुख उसने पाया जो आलसी बनके पड़ा न रहा ॥
अतः विश्व साहित्य की अनमोल निधि "वेद" जीवनोपयोगी अनूठी शिक्षाओं का अक्षय सागर और विवेकशीलों का प्रियतम वस्तु है।

वेद महिमा

वेद ही जग में हमारा, ज्योति जीवन सार है।
वेद ही सर्वस्व प्यारा, पूज्य प्राणाधार है ॥
सत्यविद्या का विधाता, ज्ञान का गुरु ज्ञेय है।
मानवों का मुक्ति दाता, धर्म श्री का ध्येय है।
वेद ही परमेश प्रभु का, प्रेम पारावार है ॥ १ ॥
ब्रह्म कुल का देवता है, राजकुल रक्षक रहा।
वैश्य वंश विभूषिता है, शूद्र कुल स्वामी महा।
वेद ही वर्णाश्रमों का, आदि है, आधार है ॥ २ ॥
श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव, पुण्य-पावन पर्व है।
वेद-व्रत स्वाध्याय वैभव आज का सुख सर्व है।
वेद पाठी विप्रगण का, दिव्य दिन दातार है ॥ ३ ॥
वेद का पाठन-पठन हो, वेद वाद विवाद हो।
वेद हित जीवन मरण हो, वेद हित आहार हो।
आर्यजन का आज से व्रत, विश्व वेद प्रचार है ॥ ४ ॥
"विश्व भर को आर्य करना' वेद का सन्देश है।
"मृत्यु से किञ्चित् न डरना" ईश का आदेश है।
सृष्टि सागर में हमारा, वेद ही पतवार है ॥ ५ ॥
रोज रोज सरोज सम श्रुति, 'सूर्य' से खिलते रहें।
वेद चन्द्र, चकोर हम, श्रुति मोद से मिलते रहें।
वेद ही स्वामी सखा सब वेद ही परिवार है ॥ ६ ॥

डा सूर्य देव जी